लाम

परमेश्वर झा 'प्रहरी'

Copyright © 2019, Parameshwar Jha 'Prahari'
All rights reserved.

No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or any information storage and retrieval system now known or to be invented, without permission in writing from the publisher, except by a reviewer who wishes to quote brief passages in connection with a review written for inclusion in a magazine, newspaper or broadcast.

Published in India by Prowess Publishing,
YRK Towers, Thadikara Swamy Koil St, Alandur,
Chennai, Tamil Nadu 600016

ISBN: 978-93-89097-66-5

Library of Congress Cataloging in Publication

विषय सूची

प्रस्तावना xi

भूमिका xiii

1. आरंभिक जीवन .1

2. छात्र जीवन. 3

3. सैन्य जीवन 6

4. पलटन 8

5. इमानदारी 10

6. सर कटा फ़ौजी. 12

7. पहली छुट्टी. 14

8. तहज़ीब 15

9. माँ का दूध. 16

10. शादी 17

11. वार्षिक निरीक्षण 20

12. हिमालय के दिन. 22

13. सोने चाँदी के पहाड़ 24
14. बद्रीनाथ 26
15. उलाहना 28
16. माना. 30
17. आकाश 32
18. वसुधारा 34
19. तीन भूत. 35
20. बाघ 37
21. उस्ताद कल्याण 38
22. डाक्टर 39
23. जीब्ति 40
24. मिश्रजी. 41
25. 1984 का सैन्य सिख विद्रोह. 42
26. बाढ़ समीक्षा 43
27. विद्रोह 45
28. जाँच 52
29. परिणति 57
30. साजिश 59
31. पलाटियाँ 62
32. कश्मीर 63
33. दक्शुम. 64

34. अर्जुन 69
35. दो दढ़ियल. 72
36. पेशकस 74
37. बड़े कमांडर 76
38. कूपमंडुक. 78
39. सूरत या सीरत. 80
40. कश्मीर वादी 83
41. देशभक्त रशीद. 85
42. कोर कमान्डर 90
43. शहादत. 94
44. परिवार. 97
45. उद्यमी व्यवसायी 101
46. नेतागिरी 106

आरंभिक जीवन

मै सन 1952 में मिथिला के एक संयुक्त परिवार में पैदा हुआ और खाते-पीते खेलते-कूदते बड़ा होता गया। खेतों-पगडंडियों पर दौड़ते-भागते बहुत कुछ देखा अनुभव किया। यहाँ जो बड़ा था वही असली मालिक था। जो तगड़ा व बुध्धिमान था वही अगुआ था। देश की आजादी के तुरंत बाद के दिन थे। जनसंख्या कम थी, गरीबी बहुत। फिर भी लोग एक-दूसरे का खयाल रखते थे। बड़े-बड़े पेड़ों वाले आम के बगीचे थे जिनकी दिन में रखवाली हमारी जिम्मेदारी होती थी। पेड़ों पर तरह-तरह के आम लदे होते थे। हम उन्हीं पेड़ो की सघन डालियों पर लुक्का-छिप्पी खेलते; पर जैसे ही आम गिरने की 'टप' सुनाई देती, सारे बच्चे उधर भागते। जिसने उठाया आम उसी का। हम दिन भर का इकट्ठा किया हुआ आम घर लाते और सब मिल-बैठ कर खाते। अच्छे पके आम जब पेड़ो से नीचे गर्मी से तपे हुए सख्त जमीन पर गिरते हैं तो फट कर 'बिहुँस' जाते हैं। ये जब हाथ लगते तो सीधे होठों से चिपक जाते। इन दिनों आम खा कर फूले हुए हमारे पेट के ऊपर फँसे बनियान आम के रस से दाग-दाग होते। पेड़ो के ऊपरी टहनियों में चिड़ियों के घोसले हम देख आते थे। कभी-कभार उनमें अंडे भी होते थे, पर हम उन्हें नहीं छूते। हमें बताया गया था कि छूने से अंडे खराब हो जाते और उनसे बच्चे नहीं निकलते। पर उत्सुकता इतनी थी कि हर सुबह, बगीचे में पहुंचते ही, जब तक उन घोसलों का मुआयना न हो जाता, चैन नहीं।

मां की लाख धमकियों के बाबजूद, हम गांव के तालाब में तैरना सीखने से बाज नही आते। गाय, भैंस, बकरियों के बच्चे कैसे पैदा होते थे, हमें सब पता था। खेती-बाड़ी सब में माहिर। हाँ हमारा

स्कूल भी था, जहाँ हम पढ़ते कम, पंडित जी से मार ज्यादा खाते थे। लेकिन दहशत ऐसी कि सारे पहाड़े, सवैया, डेढ़ा (आज के तमाम मैथ्स के टेबुल) एकदम याद। वर्णमाला, हलन्त, विषर्ग सब याद। पंडित जी के दाहिने हाथ में डंडा और बांया हाथ हमारे दाहिने कान पर होता था, जोर से मड़ोड़ने के लिए। ब्रिटेन के वैज्ञानिकों को अब पता चला है कि हमारे दाहिने कान के सटे नीचे की ग्रंथि का हमारे याददाश्त से करीबी सम्बन्ध है। हमारे विनोधर पंडित जी को तभी पता था। तमाचा बायीं गाल पर और मड़ोड़ना हमेशा दाहिने कान को! लिखावट थोड़ी भी टेढ़ी-मेढ़ी होते ही डंडा सीधे उंगलियों पर। खैर पिटते-पिटाते हमारी पढ़ाई शुरू हो चुकी थी। हाँ चूंकि अंग्रेज अभी-अभी निकाले गये थे सो कोई अंग्रेजी पढ़ना नहीं चाहता था और पंडित जी को अंग्रेजी बिल्कुल नहीं आती थी। अब भी गाँव के स्कूलों में अंग्रेजी हिन्दी में ही पढ़ाई जाती है!

भादो महिने के पानी से भरे धान के लहलहाते खेतों मे़ं छोटी मछलियों की भरमार होती थी और उन खेतों के गीली मेढ़ों के बड़े-बड़े छेद में केंकड़े रहते थे। मोहर ऋषिदेव रात को चुपके से दैता बाध (दूर के खेतों का इलाका) के अपने मालिक के खेत की मेढ़ कुदाल से काट कर अपना बाँस का सेरा (बाँस की सीकीओ से बना एक जालीदार फाँस) वहाँ लगा देता और उन उँचे धान की फसल में छुप कर बैठ जाता। उसके सेरा में बहते पानी में छोटी-छोटी मछलियां इकटठी होती जातीं। मालिक के नुमाइंदे अहले सुबह, कंधे पर कुदाल लिए, खेत का पानी बांधने के बहाने आ धमकते और मोहर की अच्छी मछलियाँ मालिक के नाम पर चुन कर ले जाते। मालिक को क्या मिलता ये तो मालिक ही जाने। हमें बहुत कौतुहल होता। हर वर्ष बरसात में इतनी सारी मछलियां खेतों मेंं कहां से आ जातीं। हमारे मित्र मोती ऋषिदेव ने हमें बताया था कि ये मिट्टी से पैदा होती थीं। साल के सूखे महिनों में ये मछलियां, डोका, सीपी और केंकड़े धरती के नीचे के गीले बिलों में रहते थे और खेतो में पानी भरते ही ऊपर आ जाते थे। इन दिनों गरीबों का गुजारा मड़ुवे (रागी) की रोटी और मछली के तीमन (सब्जी) पर आसानी से हो जाता था। कोशी नदी पर बाँध बनाया जा चुका था और अब हमारे इलाके में बाढ़ नहीं आती थी।

छात्र जीवन

पिता जी एक निहायत इमानदार अधिकारी थे और हम सब (सगे, चचेरे, फुफेरे) दस भाई-बहन थे, सो हमारी आरम्भिक शिक्षा सरकारी विद्यालयों में हुई। पिता जी किसी की पैरवी नहीं सुनते थे सो हर वर्ष कोई-ना-कोई नेता नाराज होकर तबादला करवा देता था। हमारी दस साल की स्कूली पढ़ाई आठ विद्यालयों में हुई। शिक्षक साधारण थे। कोई-कोई बहुत अच्छे थे और उन्हीं जैसों की बदौलत पार उतरते हुए हम पटना महाविद्यालय जा पहुंचे। यहां बहुत अच्छे शिक्षक थे और सिर्फ पढ़ाई. का माहौल था। सिनीयर बहुत मदद करते थे–अच्छे नोट, अच्छी किताबें और बिल्कुल अपनों सी निगरानी। ताल ठोक कर दिन-रात पढ़ना और नम्बर लाना। अचछा पढ़ने-पढ़ाने वालों की बहुत ईज्जत थी। कुछ भटकावे भी थे, जैसे खेलकूद, सिनेमा, दोस्त व लड़कियां। पर ये सब तो जीवन का हिस्सा हैं और अपने समय से आकर अच्छे-बुड़े अनुभव दे जाते हैं। जैसा मैं ने कहा, यहां सिर्फ पढ़ाई थी। एक शाम, बारिस के बाद, काफी उमस होने की वजह से, पढ़ाई से मन उचट रहा था। तभी अंधेरी खिड़की से एक गंभीर आवाज आई, "हास्टल का दरवाजा खुलवाइये और आप जो किताब पंढ़ रहे हैं उसे बंद ना करें, वहीं पलट कर रख दें।" ये हमारे पटना महाविद्यालय के प्राचार्य श्री महेंद्र प्रताप थे। शाम का स्टडी पिरियड चल रहा था, सो वार्ड-ब्वॉय ने सारे दरबाजे बंद कर रखे थे। ईब्राहिम से दरवाजा खुलवाया। महोदय मेरे कमरे में पधार मेरी कुर्शी में आ बैठे। मेरी किताब पलट कर देखी और आश्वस्त होते हुए कि मैं कुछ गलत नहीं पढ़ रहा था, पढ़ाई के कुछ नायाब नुश्खे बताये, पढ़ी हुई बातों को याद रखने के लिए नोट्स बनाने का गुड़ सिखाया और खुश हो कर जाते-जाते कह गये, "खूब पढ़िये।" और उत्साहित हो मैं

पढ़ता चला गया। बार-बार पढ़ने से सबकुछ याद हो गया और जब परीक्षाएं आईं तो मुझे सभी प्रश्नों के उत्तर आते थे। क्या याददाश्त थी, जो पढ़ा सब याद।

अंग्रेजी के प्रोफेसरों को समझने में बहुत दिक्कत होती थी। वे बहुत मुंह घुमा कर बोलते थे। एक सीनियर ने अंग्रेजी सिनेमा देखने की सलाह दी, सो चला गया। रात में वापस लौटा तो सीनियर सुबोध जी मिल गये और ये जान कंर कि मैं सिनेमा देख कर आ रहा था, बहुत निराश होते हुए बोले, "फर्स्ट इयर में ही सिनेमा देखने लगे तो पढ़ियेगा क्या। मैं एम ए में हूँ और आज तक सिनेमा नहीं गया।" खैर, इसके बाद मैं भी बहुत दिनों तक सिनेमा नहीं गया। हास्टलों में हमारी आपसी प्रतिस्पर्धा बहुत होती थी। हम एक-दूसरे पर नंजर रखते कि कौन कितनी रात तक पढ़ता है। कमरे की रौशनी से ही इसका अंदाजा मिलता था और कभी-कभी एक दूसरे को ठगने के लिए हम बगैर बत्ती बुझाये ही सो जाते थे; लो पढ़ते रहो रात भर!

हमारे प्राचार्य कैम्ब्रिज में पढ़े थे और उनके प्रयासों से हमने उन्हीं दिनों महर्षि महेश योगी, रामधारी सिंह दिनकर, फणीश्वरनाथ रेणु, खान अब्दुल गफ्फार खान, भारत के तत्कालीन फुटबॉल कप्तान चन्देश्वर प्रसाद आदि को देख-सुन लिया था। एक दिन देखा फिल्मों के प्रसिद्ध चरित्र अभिनेता नाजिर हुसैन हास्टल के बरामदे में खड़े बतिया रहे थे। वो आरा के रहने वाले थे और हमारे कालेज के पुराने छात्र थे। वे हम सब के साथ बी ए लेक्चर थियेटर गये और हमें अच्छी पढ़ाई करने को प्रोत्साहित किया। प्रकाश पादुकोण ने यहीं व्हीलर सिनेट हाल में हमारे नजरों के सामने तत्कालीन राष्ट्रीय चैंपियन देवेन्द्र आहुजा को पहली बार परास्त किया था। यहीं साइंस कालेज के मैदान पर हमने उभरते युवा खिलाड़ी दिलीप वेंगसरकर को सुंदर शतक लगाते देखा था।

बड़े अच्छे और पढ़ाकू मित्र थे यहां। प्रमोदा, सत्या, मिथिलेश, कमलेंद्र, अनिल, रविन्द्र व रणधीर तो खास ही थे। उनके हँसमुख उत्साही चेहरे अब भी वैसे ही सामने आ जाते हैं। हम खूब पढ़ते थे, एक-दूसरे से ज्ञान बांटते थे। जिंदगी के बहुत ही सरल पर अच्छे दिन थे। अच्छे पढ़ाने वाले प्रोफेसर के क्लास में हम भीड़ लगा

देते; हालांकि उन दिनों ज्यादातर अच्छे ही थे। अंग्रेजी के अकिंचन दास गुप्ता, देवीदास चटर्जी, दामोदर ठाकुर, विष्णु सहाय और रंजन नारायण; राजनीति शास्त्र के विश्वनाथ वर्मा, चेतकर झा, मित्रनंदन झा, ब्रज किशोर झा, राजेन्द्र प्रसाद राही; इतिहास के असकरी साहब, राम शरण शर्मा, काली किंकर दत्त, दीनानाथ वर्मा; मैथिली के आनंद मिश्र, अमरेश पाठक; संस्कृत के बेचन झा और शर्मा जी इत्यादि का पढ़ाया अब तक याद है। उन दिनों याददास्त बहुत अच्छी थीं। हर विषय के नोट बना डालते थे, सैकड़ों पृष्ठ घोंट डालते थे। इसी दौरान इंदिराजी की आपातकाल के विरुद्ध जन आंदोलन ने जोर पकड़ा और हमारी परीक्षाएं आगे बढ़ा दी गईं। अपने विषय-वस्तुओं को घोंट हम तैयार बैठे थे और डर था कि अगले कुछ महीने में बहुत कुछ भूल जा सकते थे। हम सब बहुत हताश थे। हास्टल के खाने की मेज पर पड़े अखबार में सेना में अफसर बनने का विज्ञापन छपा था। मैं बोल उठा कि परीक्षा के इंतजार से तो बेहतर होता सेना में अफसर बन जाना। मेरे सामने बैठे तीनों सहपाठियों ने व्यंग में एक साथ हुँकार भरा। उन में से एक, शशिशेखर बोल उठा, “झा जी, चूड़ा-दही समझ लिये हैं। देखते हैं न हम तीनों को; सैनिक स्कूल तिलैया वाले हैं। सर्विसेज सेलेक्शन बोर्ड बहुत मुश्किल है। बार-बार गये पर नहीं हुआ।” मैं चुप रहा, पर ‘चूड़ा-दही’ वाली बात चुभ गई। पर कभी सैन्य जीवन के बारे में सोचा नहीं था। सैनिकों की बहुत सारी कहानियां पढ़ रखी थी और उनके लिए बहुत आदर था। अभी पिछले सेना दिवस पर कुछ लड़कियां सीने पर झंडा खोंस चंदा ले गई थीं, तो रोमांच हो आया था; पर यह वीर सैनिकों के लिए नहीं वरण उन सुंदरियों के लिए था जो बहुत सहजता से मुस्कुराते हुए हर शिक्षक व छात्र को झंडे बांटती हुई सैन्य कल्याण के लिए चंदा इकट्ठा कर रही थीं। खैर, प्रक्रिया से गुजरते हुए मैं सेना में अफसरी के लिए चुन लिया गया। इस प्रक्रिया में बहुत से दोस्तों-जानकारों ने मदद की, मसबरे दिये, अनुभव बांटे। बहुत से लोगों ने फौज में जाने से मना किया। पर जिंदगी में पहलीबार कहीं नौकरी मांगने गया था और फौज ने ना नहीं कहा। मैं कैसे दगा दे जाता, चला गया।

सैन्य जीवन

चयनित होने के बाद मैंने पढ़ाई बंद कर दी। अफसर बन गये थे, अब क्या पढ़ना। वो तो पिता जी ने चेताया कि जबतक ट्रेनिंग में ना चले जाओ, पढ़ते रहो; सो कभी-कभी अपने नोट्स पलट लेता था। खैर मैं फौजी प्रशिक्षण में जा पहुंचा। एकदंम अलग वातावरण था। वहां कालेज में सतरह-अठारह घंटे पढ़ना और यहां दिन-रात भागम-भाग। शारीरिक प्रशिक्षण (पी टी) से परेड, हथियार से सैन्य कला, पट्टी परेड (तीव्रतम गति से एक पोषाक से दूसरे पोषाक में बदलना), बाधा दौड़, लंबी दौड़, लंबे पैदल मार्च, घुड़सवारी, कलाकारी इत्यादि...। शुरु के महीनों में तो बिल्कुल चैन नहीं था। भुच्चड़ों की तरह छोटे बाल, सूखे मुंह, सुबह-शाम लंगड़ाते भागते जेन्ट्लमैन कैडेट (जी सी)। प्रशिक्षक रोज पूछते, जिसने वापस जाना है, हाथ उठायें। मन करता वापस चला जाऊँ अपने किताबों की दुनियां में। पर मैं ऐसा नहीं कर सका। इसके दो कारण थे। मेरे सामने वाली केबिन में बिल्कुल दुबला-पतला चटर्जी था, जो मुझसे कमजोर था। मैं सोचता जब ये हार नहीं मान रहा तो मैं कैसे हाथ उठा दूं। उसने हाथ ऊपर नहीं किये और एक महीना बीत गया। बहुत बाद मे बातों के शिलशिले में चटर्जी ने बताया कि उसे ये नौकरी बहुत ठोकरें खाने के बाद मिली थी, सो वापस जाने की गुंजाइश ही नहीं थी। दूसरा कारण था, आते समय सभी ने (मां, पिताजी, प्रोफेसर, दोस्त) मना किया था कि अच्छीभली पढ़ाई छोड़कर फौज में जाना ठीक नहीं; पर मैंने किसी की नहीं सुनी थी तब। अब जो वापस जाता तो सब बुजदिल समझते, सो वापस नहीं गया।

खैर, भागते-दौड़ते शरीर तो मजबूत हो गया, पर ड्रिल के मैदान पर पैर पटक-पटक कर दिमाग मोटा हो गया। कहाँ तो शाम को पढ़े सैकड़ों पन्ने महीनों याद रहते थे और अब शाम का पढ़ा सुबह याद न रहता। शरीर गठीला होता गया और मैं अफसर बन गया। एक नया उत्साह था।

You've Just Finished your Free Sample

Enjoyed the preview?

Buy: https://store.prowesspub.com